IJAER/September-October 2024/Volume-13/Issue-5 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) Impact Factor:7.06

कपड़ा रंगाई प्रक्रिया : इतिहास एवं विकास

शालिनी आल्हा
सह आचार्य
चौ. ब.रा.गो.राज.कन्या महाविद्यालय
श्रीगंगानगर

परिचय :–

कपड़ा रंगाई से मतलब रंग नामक पदार्थ को कपड़े पर इस प्रकार लगाया या इस्तेमाल किया जाए की वह स्थाई हो जाए, और कपड़े को रंगीन बना दे। यह रंग की रासायनिक रचना और रेशे की रासायनिक रचना के बीच की अन्तःक्रिया है। रंग (डाई) के अणुवों का रेशों में अवशोषण, प्रसार व बंधन से यह क्रिया पूर्ण होती है। और यह पूरे वस्त्र को रंग के विलयन में डाल कर की जाती है। रंगाई का इतिहास मानव सभ्यता के इतिहास के साथ जुड़ा हुआ है। प्रारम्भिक काल में प्राकृतिक रंग खोजे गए। उसके पश्चात् धीरे–धीरे सभ्यता के विकास के साथ रासायनिक व संष्लेशित रंगों का विकास हुआ।

मुख्य शब्द :– डाई, रंजक, सभ्यता, संश्लेषित, परम्परा, डिजाइन।

पुरातन काल में मानव ने भोजन की तलाश करते हुए रंगों को भी खोजा होगा। इनमें से कुछ रंग पानी से धोने पर हाथों से छूट जाते थे। जबकि कुछ रंग स्थाई निकले। इस समय फलों, फूलों, जड़ों, पत्तों व छाल से रंग निकाले जाते। इन रंगों को शरीर को रंगने व सुन्दर दिखने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। धीरे–धीरे इसका उपयोग वस्त्रों व दूसरी वस्तुओं पर होने लगा। सभ्यता के विकास के साथ नए रंगों की खोज हुई और उनका व्यापार भी शुरू हुआ। शुरूआती काल में बहुत ही कम ऐसे रंग थे जो वस्त्र पर पक्के रहते थे। रंगीन वस्त्रों को एश्वर्य का प्रतीक माना जाता था। जिसका इस्तेमाल केवल राजघराने के लोग, पुजारी व समाज के उच्च श्रेणी के धनी लोग करते थे। इसके पीछे दूसरा कारण यह भी है कि रंगाई प्रक्रिया जटिल व मुश्किल थी और समय भी अधिक लगता था। कपड़ा रंगाई में अधिक कुशलता की जरूरत चाहिए होती थी, यही कारण है कि एक रंगरेज सिर्फ एक ही रंग की रंगाई में महारथ हासिल करता था।

प्राचीन संप्रदायों में रंगाई आय का एक महत्त्वपूर्ण साधन थी। कपड़ा रंगाई के लिए इस्तेमाल होने वाले बर्तन व उपकरण बहुत साधारण थे। जैसे– मोलस्क के खोल, नारियल का खोल, मिट्टी से बने गड्डे बर्तन की तरह इस्तेमाल होते थे। पेड़ की टहनी रंग के घोल को मिलाने व घोलने तथा रंगीन पदार्थ में कपड़े को हिलाने के लिए काम में आती थी। पहले रंगाई ठंडे पानी में की जाती थी, कई बार धूप व गर्म पत्थरों से रंग के विलयन को गर्म किया जाता था।

समय के साथ यह खोजा गया कि वस्त्र को रंगाई से पहले कुछ विशेष तरह के बरताव या उपचार दिए जाए तो रंग कपड़े पर और अधिक समय तक पक्के रह सकते हैं। उदाहरण के लिए खनिज उपचार व स्काउरिंग इत्यादि।

भारत में वस्त्र रंगाई का इतिहास व विकास :–

माना जाता है कि वस्त्रों की रंगाई परम्परा का जन्म भारत में हुआ है। भारत को प्राचीन विश्व का रंगों का बक्सा या पिटारा कहा जाता है। बहुत से प्राकृतिक रंगों की आपूर्ति भारत द्वारा की जाती थी। नील, मेजिस्था, लाख, चन्दन, कत्था, हल्दी, केसर आदि रंग भारत से ही निर्यात होते थे। अन्य किसी देश में ये रंग नहीं मिलते थे। भारत में रंगाई कला सिन्धू घाटी सभ्यता (3500 ठब) से चली आ रही है। सिन्धू घाटी सभ्यताएं जैसे– हड़प्पा व मोहनजोदड़ो के अवशेषों से प्राप्त कपड़ों के टुकड़ों पर मेजिस्था रंग के साक्ष्य मिले हैं। जिससे यह बात साबित हो जाती है।

वेदों में भी रंगाई का जिक्र किया गया है। चाणक्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में लाल व काले रंग की बात कही है। रोमन भूगोलवेत्ता प्लिनी में 70 ।क में अपनी पुस्तक में लिखा है कि भारत में कपड़े की रंगाई के लिए मेजिस्था का इस्तेमाल होता है। रामायण व महाभारत जैसे महाकाव्यों में भी रंगाई के अनेकों संदर्भ मिलते हैं।

भारत के परम्परागत रंगीन वस्त्रों में इस तकनीक की कोई बराबरी नहीं कर सकता। इस तकनीक का प्रारम्भ 5वीं शताब्दी में हुआ माना जाता है। और 11वीं शताब्दी तक यह एक वृहत्त उद्योग का रूप ले चुका था। इस तकनीक से गुजरात के पाटन, राजकोट व सूरत में पटोला, साड़ी, उड़ीसा के सम्बलपुर व नवपटना में विचित्रपुर साड़ी, आन्ध्र प्रदेश में पोचम्मपली व चीराला साड़ी, तेलीया रूमाल और तमिलनाडू के मद्रास में रूमाल, लूंगी इत्यादि बनाए जाते थे।

जिन्होंने विश्व भर में अपनी अलग पहचान बना रखी है। वैश्विक बाजार में पसन्द किए जाने पर इनकी माँग भी बढ़ी और यह उद्योग और अधिक फलने फूलने लगा। 15 से 16 ईस्वी में गुजरात की पटोला को समरकंद, बुखारा, बगदाद व रोम में निर्यात किया जाता था। 16वीं ईस्वी में ही इंडिगों यूरोप में निर्यात होता था। मुगलकाल में रंगाई कला को काफी प्रोत्साहन दिया गया। 17वीं शताब्दी में गोलकुण्डा के बाटिक रंगाई के कपड़े ईस्ट इंडिज देशों में निर्यात किये जाते थे। इस कला को बाद में कोरोमंडल चिंत्ज कहा गया और इसका उत्पादन व निर्यात का क्षेत्र और बढ़ गया।

विश्व में वस्त्र रंगाई का इतिहास व विकास :–

ऐसा माना जाता है कि स्विस झील के पास रंगाई करने वाला समुदाय रहा करता था। और वहीं से पश्चिमी रंगाई कला का विस्तार हुआ। फोनीशियन डाई उद्योग 16 से 17वीं शताब्दी ।क से शुरू हुआ माना जाता है। इस समय ये अपनी टायरियन बैंगनी रंग के लिए प्रसिद्ध थे। जो कि एक समुद्री घोंघे से तैयार की जाती थी। बाद में यह कला यूरोप तक पहुँची। वहाँ पर भी इस रंग का इस्तेमाल होने लगा। राजसी घरानों व धनाड्य लोगों द्वारा ही इस रंग से रंगे वस्त्र पहने जाते थे। यह रंग विलासिता का प्रतीक था। इसके बाद यूरोप में एक और रंग किरमिजी की खोज हुई

व इस्तेमाल होना शुरू हुआ। यह अपने आप में पहला लाल रंग था। जो कि एक कीड़े से प्राप्त किया गया था। इसका इस्तेमाल 1550 ईस्वी तक बन्द कर दिया गया। इसके पीछे कोचीनियल रंग को एक कारण माना जाता है। यह भी एक प्रकार के कीड़े से प्राप्त किया जाता है। यह अमेरिका से यूरोप में लाया गया था। कीड़ों को कैक्टस से इकट्ठा करके उन्हें धूप में सुखा कर, पीसकर लाल रंग बनाया जाता था। यह अन्य लाल रंग की तुलना में अधिक चमकीला होता था। इसलिए उस समय अन्य रंगों की तुलना में इसका अधिक प्रयोग किया जाने लगा।

मध्य युग (11वीं से 14वीं शताब्दी)–

13वीं शताब्दी में इटली में अर्चिल वायलेट रंग की खोज की गई। यह रंग लाल, गहरा नीला व बैंगनी जैसे अलग–अलग शेड में मिलता था। यूरोप में यह इटली से सैकंड़ो सालों तक निर्यात होता रहा। इसके बाद गहरा लाल रंग जो कि मजिस्था या मैडर के नाम से जाना जाता था मध्य युग का महत्त्वपूर्ण रंग बन गया। मैडर के पौधे की जड़ से यह रंग प्राप्त होता है। जिसे एलिजेरिन के नाम से जाना गया। 1868 में रसायनज्ञों ग्रेबर और लिबरमैन ने प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से एलिजरीन रंग बनाया जिससे यह पहला कृत्रिम रूप से तैयार होने वाला प्राकृतिक रंग बन गया और प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल इस कृत्रिम रंग के साथ ही समाप्त हो गया।

यद्यपि मध्य युग में रंगों की खोज लागतार हो रही थी। परन्तु रंगाई कला का विकास धीरे ही चल रहा था। उस समय रंगरेजों के हालात ज्यादा अच्छे नहीं थे। उसे वस्त्र निर्माण की दुनिया में सबसे निम्न सदस्य के रूप में देखा जाता था। इसके चलते सन् 1188 में लंदन में रंगरेजों की एक कम्पनी ''वर्शीफुल कम्पनी ऑफ डायर'' के नाम से स्थापित की गई। इसके बाद रंगरेजों के अधिकारों को भी अन्य के समान महत्त्व दिया जाने लगा।

उत्तर मध्य युग :–

16वीं शताब्दी तक वोड (आइसैटिक टिंक्टोरिया) यूरोप में सबसे महत्त्वपूर्ण नीला रंग था। यह प्राकृतिक रंग एक पौधे के पत्तों से बनाया जाता है। यह इंडिगों से पक्का लेकिन कम चमकीला था। खास तौर पर इसे ऊन को रंगने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। भारत से यह अन्य देशों में निर्यात होता था। इसका उपयोग 1897 तक होता रहा। इसके बाद कृत्रिम इंडिगो रंग ने इसका स्थान ले लिया। इसी तरह कत्था से निकलने वाला भूरा रंग भारत में ही मुख्य रूप से मिलता था। जिसे 1806 में यूरोप में पहली बार भेजा गया।

रंगाई की दुनिया का वैज्ञानिक युग का आरम्भ :–

18वीं शताब्दी से पहले रंगरेज रंगों को कपड़े पर इस्तेमाल प्रयत्न एवं भूल के सिद्धान्त पर करते थे। रंगाई की कोई वैज्ञानिक पद्धति नहीं थी। बल्कि रंगरेज की यादाश्त पर निर्भर था। 18वीं शताब्दी में फ्रांस के एक रायासनशास्त्री ने अपने प्रयोग में रंगों के भौतिक एवं रासायनिक तंत्र व क्रियाविधि को समझने की कोशिश की। इस प्रयोग की जानकारी के इस्तेमाल से फ्रांस के वस्त्र उद्योग ने बहुत विकास किया। जिसे देखकर अन्य देशों ने भी वैज्ञानिक तरीकों

का इस्तेमाल आरम्भ कर दिया। रंगों व रंगाई विधियों के इस सुनहरे काल में रंगाई पर बहुत सी किताबें भी लिखी गई।

संश्लेषित रंगों का युग :–

लंदन के रॉयल कॉलेज ऑफ कैमिस्ट्री के वैज्ञानिक शिक्षक विलियन हेनरी परकिन ने 1856 में कुनीन बनाने का काम करते हुए अचानक संश्लेषित रंगों को खोजा। यह एनिलिन से बनी हल्के बैंगनी (लेवेंडर) रंग की डाई थी जो कि क्षारिय प्रकृति की थी। यहीं से प्राकृतिक रंगों के इस्तेमाल का अन्त शुरू हुआ। इसके बाद फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी, स्वीट्जरलैण्ड में ये रंग प्रसिद्ध हो गए और नए नए संश्लेषित रंग खोजे जाने लगे। 1868 में ग्रेलर और लीबरमैन ने एलजेरियन रंग मैडर से बनाया। जिसके बाद सैंडोस लिमिटेड ने क्रोम डाई बनाई। इसके साथ ही 1860 में मिस्वाक (भूरा रंग) पहला अम्लीय डाई बना। इसके बाद अगले दो दशकों में बहुत सी नई अम्लीय डाई का निर्माण विभिन्न प्रयोगशालाओं में हुआ। अभी तक बने सभी अम्लीय रंग ऊन के रेशों को रंगने के लिए तो सही थे, साथ ही इन्हें कपास के रेशों से बने वस्त्रों पर इस्तेमाल करने के लिए प्रीमोरडेन्टिंग प्रक्रिया की जाती थी।

1883 के आसपास जर्मन वैज्ञानिकों द्वारा पहली डायरेक्ट डाई जो कि कोंगो रेड के नाम से जानी जाती है कि खोज की। वर्तमान में संश्लेषित रंगों की दुनिया में सबसे बड़ी संख्या इन रंगों की ही थी। 1880 के ही दशक में पहली संश्लेषित एजोइक रंग खोजे गए। इसी श्रेणी में 1897 में संश्लेषित इंडिगो रंग बनाया गया जो रंग उद्योग की सबसे बड़ी खोज थी। क्योंकि यह उस समय सबसे ज्यादा इस्तेमाल होने वाला रंग था। 1922 में पहली बार इंडोसोल रंग बनाए गए। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में धातु सम्मिश्रित रंगों को खोजा गया। 1920 के दशक में जब संश्लेषित रेशे एसिटेट की खोज हुई तो इस रेशे को रंगने के लिए एसिटेट रंग भी विकसित किए गए। जिन्हें बाद में अन्य रेशों को रंगने के लिए उपयोग में लाया गया। 1954 में रिएक्टिव रंग जिन्हें प्रतिक्रियाशील रंजक के नाम से जाना जाता है की खोज की गई।

निष्कर्ष :–

वर्तमान में प्रतिदिन नए रेशों के आविष्कार हो रहे हैं। साथ ही वैज्ञानिक युग में नए–नए रंग बाजार में आ रहे हैं। जिसके फलस्वरूप न केवल उपभोक्ता के पास चयन की बड़ी सूची है। साथ ही डिजाइनर व रंगरेज के पास भी चयन का असीमित दायरा है। प्रारम्भिक काल के रंग वस्त्र पर अधिक समय तक नहीं रहते थे। परन्तु वर्तमान के वैज्ञानिक काल में यह समस्या नहीं है। विभिन्न रसायनों की उपस्थिति में रंग लम्बे समय तक वस्त्र से जुड़े रहते हैं।

सन्दर्भ सूची :–

1- वर्मा प्रमीला, वस्त्र विज्ञान, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

2- Portral Virginia. The fabric of civilization. How textiles made the World, Basic Books, 2020

3- Harris Jenifer, Five thousand years of Textiles

4- Crill Rosemarg, Chintz Indian textiles for the West mapin publishing and V and A Publishing, 2008.

5- Marleen, Morgans, Textile Time : Using yarns and fabrics, Hodder and Stonghton Publisher, 1986

6- Walton Perry, The story of Textiles, Tudor Publeshing Co. 1925

7- St. Clair, Kassia, The Golden thread : How fabric changed History, Liveright Publishing, 2021